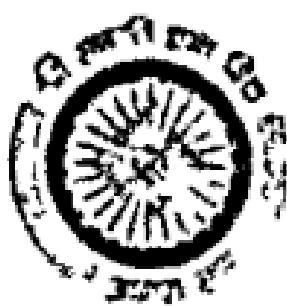


संस्कृति साहित्य-राजप्राचीना एव प्राचीनतमा ग्रन्थ

पच्चीस वोल

स्वामीशार
शिवप्रसुनि शास्त्री, मादिप्रग्न



सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा.

च्यरिपाकार :

विजय मुंडि शास्त्री, साहित्य रत्न

प्रकाशक :

मन्मनि ज्ञान पीठ, आगरा

शुद्धक .

प्रेम प्रिटिंग प्रेस, आगरा

प्रथम प्रवेर्ण :

सा १९६०

मूल्य :

पचास नये पैसे

पश्चीम चौल + एक

मू
ल्
या
रु
न

— मुखोऽग्र मुनि

० 'मैन दर्शन' के मूल शून गिरावतों पा
शा बरने याले प्रत्येक व्यक्ति या
गायात्रार मर्व प्रथम हृषी संधुनम् पाप मे
होता है। यदी वह मूलात्मक प्रन्थ है,
जिसको हृदयंगम कर, दर्शन धार्य थी
गहुराई म उत्तरा जाता है, और इसी के
भाव्यम् से आगम प्राणों के विनान भागर
का पार विया जाता है।

० इस हृष्टि से यह संधुनम् प्रन्थ प्रयाप्त
मूलयान है। इस प्रन्थ की व्याख्या अब तर
प्राप्त नहीं थी। प्रति कोमल मनि वालको
को इस का रहस्य ममझे म, यदी अमुविधा
थी इस व्याख्या से उक्त ममस्था का हन द्वा
गया—एक सुन्दर सूप म।

० मेरा विद्वाम है, इस मूल शून प्रन्थ की
व्याख्या लियकरथी विजय मुनि जी ने तत्त्व
जिनामुद्धा का बाही उपचार विया है।
व्याख्या नैती सुन्दर, सरम थीर सरल है।
इससे वालक से लेकर बढ़ तर मझी-नाम
उठा मरने हैं।

प्रकाशक की ओर से

‘पच्चीस बोल’ को नये हृष म, पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हम महान् हृष है। यह एक लघु, पर साथ ही महत्व पूर्ण मिदान्त ग्रन्थ है। सन्त और गुहस्थ प्राय सभी इसकी याद करते हैं। ज्ञानवे मुक गम्भीर ज्ञान को समझने के लिए पच्चीस बोल एक चारों है।

लाला मदखनलाल जी हमारी समाज के एक अनुभवी एवं वयोवृद्ध श्रावक हैं। आपकी यह बहुत दिनों से श्रमिलापा थी कि पच्चीस बोल पर एक लघु व्याख्या भी हो, जो सरल एवं सुविद्य भाषा में हो। आप ने अपनी यह भावना उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज की सेवा में व्यक्त की। फिरत उपाध्याय श्री जी महाराज ने अपना स्वास्थ्य ठीक होने के बारण यह कार्य अपने सुयोग शिष्य विजय मुनि जी को करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में लाला मदखनलाल जी ने जो शर्ष महापता की है, इसके लिए हम लाला जी का सम्मान की ओर से धन्यवाद करते हैं। गादा है, भविष्य में भी उनकी ओर से हम इस प्रकार की सहायना मिलती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक पाठशाला, विद्यालय और स्कूल वे छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। छात्र एवं छात्राएँ यदि इस पुस्तक का पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, तो हमारा यह प्रयाग सफल होगा।

मनी—सोनाराम लैन

पञ्चीस वोल

[मूल]

१

गोल पहला • गति चार

- | | |
|--------------|--------------|
| १ नरवं गति | ३ मनुष्य गति |
| २ तिर्थच गति | ४ देव गति |

★

२

गोल दूसरा • जाति पाच

- | | |
|---------------------|--------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति | ३ श्रीन्द्रिय जाति |
| २ द्वीन्द्रिय जाति | ४ चतुरन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति | |

★

३

गोल तीसरा काय छह

- | | |
|--------------|---------------|
| १ पृथ्वी काय | ४ वायु काय |
| २ अप् काय | ५ बनम्पति काय |
| ३ तेजस् काय | ६ अस काय |

★

बोल चाँथा • इन्द्रिय पाच

- | | | | |
|---|------------------|---|------------------|
| १ | श्रोत्र इन्द्रिय | ३ | द्वाण इन्द्रिय |
| २ | चक्षुप् इन्द्रिय | ४ | रसन इन्द्रिय |
| | | ५ | स्पर्शन इन्द्रिय |



५

बोल पाँचराँ • पर्याप्ति छह

- | | | |
|---|---------------|-----------|
| १ | आहार | पर्याप्ति |
| २ | शरीर | पर्याप्ति |
| ३ | इन्द्रिय | पर्याप्ति |
| ४ | श्वासोच्छ्वास | पर्याप्ति |
| ५ | भाषा | पर्याप्ति |
| ६ | मन | पर्याप्ति |



६

बोल छठा : प्राण दण

- | | |
|---|---------------------------|
| १ | श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण |
| २ | चक्षुप् इन्द्रिय बल प्राण |

- ३ धाण इन्द्रिय बल प्राण
 ४ रसन इन्द्रिय बल प्राण
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय बल प्राण

 ६ मनो - बल प्राण
 ७ वचन बल प्राण
 ८ काय बल प्राण

 ९ इवासोच्छ्वास-बल प्राण
 १० आयुष्य बल प्राण

★

७

चेत्ति मात्राँ • शरीर पाच

- १ औदारिक शरीर
 २ वैक्षिय शरीर
 ३ आहारक शरीर
 ४ तंजस शरीर
 ५ कार्मण शरीर

★

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

- १ सत्य मनो - योग
- २ असत्य मनो - योग
- ३ मिथ्र मनो - योग
- ४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

- १ सत्य वचन - योग
- २ असत्य वचन - योग
- ३ मिथ्र वचन - योग
- ४ व्यवहार वचन - योग

सात काय के

- १ औदारिक काय - योग
- २ औदारिक-मिथ्र काय - योग
- ३ वैक्षिय काय - योग
- ४ वैक्षिय-मिथ्र काय - योग
- ५ आहारक काय - योग
- ६ आहारक-मिथ्र काय - योग
- ७ कामण काय - योग

★

बोल नौराँ उपयोग वारह

पाँच ज्ञान

- | | | | |
|---|-------------|---|-----------------|
| १ | मति ज्ञान | ३ | अवधि ज्ञान |
| २ | ध्रुत ज्ञान | ४ | मन पर्याय ज्ञान |
| | | ५ | केवल ज्ञान |

तीन अज्ञान

- | | |
|---|--------------------------|
| १ | मति अज्ञान |
| २ | ध्रुत अज्ञान |
| ३ | अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान) |

चार दर्शन

- | | | | |
|---|----------------|---|------------|
| १ | नक्षुर् दर्शन | ३ | अवधि दर्शन |
| २ | अचक्षुर् दर्शन | ४ | केवल दर्शन |

रमन इन्द्रिय के पाच विषय

- | | |
|------------|-----------|
| १ अम्ल रस | ३ कटु रम |
| २ मधुर रस | ४ कपाय रस |
| ५ तिक्त रम | |

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

- | | |
|------------------|----------------|
| १ शीत स्पर्श | ५ लघु स्पर्श |
| २ उष्ण स्पर्श | ६ गुह स्पर्श |
| ३ व्यक्ति स्पर्श | ७ मृदु स्पर्श |
| ४ स्थिर स्पर्श | ८ कर्कश स्पर्श |

★

१३

गोल तेरहाँ दण प्रकार का मिथ्यात्व

- | | | |
|-----------------|-------|-----------|
| १ जीव को अजोव | ममझना | मिथ्यात्व |
| २ अजीव को जीव | ममझना | मिथ्यात्व |
| ३ धर्म को अधर्म | समझना | मिथ्यात्व |
| ४ अधर्म को धर्म | समझना | मिथ्यात्व |
| ५ साधु को असाधु | समझना | मिथ्यात्व |
| ६ असाधु को साधु | समझना | मिथ्यात्व |

- ७ ममारमाग वो माथमार्ग समझना मिथ्यात्म
 ८ मोथमाग का ममारमाग ममझाना मिथ्यात्म
 ९ मुक्त या अमुक्त समझना मिथ्यात्म
 १० अमुक्त वो मुक्त समझना मिथ्यात्म

★

१४

पाल नाईराजी नर तत्त्व ये ११५ भेद

नव सत्त्व

- | | |
|----------------|----------------|
| १ जीव तत्त्व | ४ आश्रय तत्त्व |
| २ अजीव सत्त्व | ६ गवर सत्त्व |
| ३ पूर्ण तत्त्व | ७ निःगत तत्त्व |
| ४ पाप तत्त्व | ८ चर्ष तत्त्व |
| ५ मोथ तत्त्व | |

जीव तत्त्व के खीरह भेद

- | |
|----------------------------|
| १ गूठम एवं द्रिय पर्याप्त |
| २ गूठम एवं द्रिय अपर्याप्त |
| ३ यादग एवं द्रिय पर्याप्त |

४	वादर	एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५	द्वीन्द्रिय		पर्याप्त
६	द्वीन्द्रिय		अपर्याप्त
७	श्रीन्द्रिय		पर्याप्त
८	श्रीन्द्रिय		अपर्याप्त
९	चतुरन्द्रिय		पर्याप्त
१०	चतुरन्द्रिय		अपर्याप्त
११	अमज्जी पञ्चेन्द्रिय		पर्याप्त
१२	असज्जी पञ्चेन्द्रिय		अपर्याप्त
१३	सज्जी पञ्चेन्द्रिय		पर्याप्त
१४	मज्जी पञ्चेन्द्रिय		अपर्याप्त

अजोव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१	स्कन्ध	२	देश
		३	प्रदेश

आकाशास्ति काय के तीन भेद

१ स्वर्णध

२ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्वर्णध

३ प्रदेश

२ देश

४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन पुण्य

५ वस्त्र पुण्य

२ पान पुण्य

६ मन पुण्य

३ स्थानि पुण्य

७ वचन पुण्य

४ शर्या पुण्य

८ काय पुण्य

९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात

४ मैथुन

२ मृपावाद

५ परिग्रह

३ अदत्तादान

६ क्रोध

३	मान	१३	अभ्यासुयान
८	माया	१४	पेगुन्य
६	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	हेप	१७	मायामृपा
१२	कानह	१८	मिथ्यादर्गन

आलंब तत्त्व से बोस भेद

पाच अव्रत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृपावाद	४	मैथुन
५	परिग्रह		

पाच इन्द्रिय

१	थोथ इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२	चधुप् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३	प्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४	रग्न इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५	रपरान इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच कानून

१	मिथ्यात्व	आत्मद	खसना ।
२	विवरति	आत्मद	खसना ।
३	प्रमाद	आत्मद	
४	कपाय	आत्मद	
५	अशुभ योग	आत्मद	

तीन वाट

- १ मन - प्रवृत्ति
- २ वचन - प्रवृत्ति
- ३ काय प्रवृत्ति

दो अयना

- १ भाष्डोपकरण, अग्नादे ज्ञे
- २ सूचि कुशायमाद, अग्नादे ज्ञे

सबर तत्त्व के शौषधे

पाच द्रुत

- १ प्राणातिपात विरपद
- २ मृपावाद - विरपद

- ३ अदनादान - विरमण
 ४ अश्रह्यचर्य - विरमण
 ५ परिग्रह - विरमण

पाच इन्द्रिय

- १ श्रोतुं इन्द्रिय - निग्रह
 २ चक्षुप् इन्द्रिय - निग्रह
 ३ प्राण इन्द्रिय - निग्रह
 ४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
 ५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पाच सार

- १ सम्यवत्तड सावर
 २ विरति मवर
 ३ अप्रमाद सावर
 ४ अकपाय मवर
 ५ शुभ योग मवर

तीन योग

- १ मनो - निग्रह
 २ वचन - निग्रह
 ३ काय - निग्रह

दा यतना

- १ भाष्टोपकरण, यतना से लेना, रखना ।
 २ सूचि कुशाग्र मान, यतना से लेना, रखना ।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

- | | | |
|----|--------------|----|
| १ | अनश्वन | तप |
| २ | ज्ञानोदरी | तप |
| ३ | भिक्षाचरी | तप |
| ४ | रम-परित्याग | तप |
| ५ | काय कलेश | तप |
| ६ | प्रति मलीनता | तप |
| ७ | प्रायशिच्छा | तप |
| ८ | विनय | तप |
| ९ | बैंयावृत्य | तप |
| १० | म्बाध्याम | तप |
| ११ | ध्यान | तप |
| १२ | व्युत्मण | तप |

बन्ध तत्त्व के चार भेद

- | | | |
|---|---------|------|
| १ | प्रकृति | बन्ध |
| २ | स्थिति | बन्ध |

३	अनुभाग	वन्ध
४	प्रदेश	वन्ध

माध्यन्तत्त्व के चार मेंद

१	सम्यग् ज्ञान	३	सम्यक् चारित्र
२	सम्यग् दर्शन	४	सम्यक् तप



१७

नोल पन्द्रहवें • आत्मा आठ

१	द्रव्य	आत्मा
२	कर्मय	आत्मा
३	योग	आत्मा
४	उपयोग	आत्मा
५	ज्ञान	आत्मा
६	दर्शन	आत्मा
७	चारित्र	आत्मा
८	वीर्य	आत्मा



बोल मोतहराँ • दण्डक चीधीम

सात नरक का एक दण्डक

१	रत्न	प्रभा
२	शर्वरा	प्रभा
३	गलुका	प्रभा
४	पङ्क	प्रभा
५	वूम	प्रभा
६	तम	प्रभा
७	महातम	प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१	यमुर	कुमार
२	नाग	कुमार
३	मुपण	कुमार
४	विद्युत्	कुमार
५	अग्नि	कुमार
६	द्वीप	कुमार
७	उदधि	कुमार
८	दिशा	कुमार

६	पदन	रुमार
१०	स्तनित	रुमार

पाच मथावर के पाच दण्डक

१	पृथी	वाय
२	अप्	वाय
३	तंजम्	वाय
४	तामु	वाय
५	वनम्पति	वाय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१	हीन्द्रिय
२	श्रीन्द्रिय
३	चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का	एक	दण्डक
१	मनुष्य का	एक	दण्डक
१	व्यन्तर देव का	एक	दण्डक
१	ज्योतिष देव का	एक	दण्डक
१	वैमानिक देव का	एक	दण्डक



बोल मतरहाँ • लेश्या छह

- १ छाण लेश्या
- २ नीन नेश्या
- ३ बापोत नश्या
- ४ तजो - लेश्या
- ५ पद्म लेश्या
- ६ गुरन लेश्या



१०

बोल अठाहाँ • हप्टि तीन

- १ सम्यग्हप्टि
- २ मिथ्याहप्टि
- ३ मिथ्र हप्टि



बोल उन्नीसर्हाँ : यान चार

- १ आर्त ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ धर्म ध्यान
- ४ शुभल ध्यान

★

२०

बोल नीसर्हाँ - पठ् द्रव्य के तीम भेद

धर्मस्तिकाय के पांच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ थोन से लोक-प्रमाण
- ३ काल मे आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित,
अस्पी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी ।
- ५ गुण से चलन गुण,
जल मे मछली का हृष्टान्त

अधर्मस्तिकाय के पांच बोल

- १ द्रव्य मे एक
- २ थोन से लोक-प्रमाण

- ३ वाल से आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अस्पी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
 ५ गुण मे स्थिर गुण,
 थान्त पथिक वो छाया का हृष्टान्त

आवाशाम्ति वाय के पाच वोल

- १ द्रव्य मे एव
 २ क्षेत्र मे लोकालोक प्रमाण
 ३ वाल से आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अस्पी, अजीव, शाश्वत, लोक-लोक-व्यापी,
 ५ गुण मे अवशाख-दान गुण,
 दूध मे बताने वा हृष्टान्त

वाल द्रव्य के पाच वोल

- १ द्रव्य से एव
 २ क्षेत्र मे अउर्ड द्वीप प्रमाण
 ३ वाल मे आदि-अन्त-रहित
 ४ भाव गे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
 अस्पी, अजीव, शाश्वत, अहाई द्वीप-वर्ती

५ गुण से बतना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपडे का हृष्टान्त

जीवान्मितकाय के पाच वोल

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त-रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की बला वा हृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय वे पाच वोल

- १ द्रव्य से अनन्त
- २ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
- ३ काल से आदि-अन्त रहित
- ४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
- ५ गुण से पूरण-गलन-गुण,
मिलते-विद्वरते, वादल का हृष्टान्त

२

गोल इमीमर्गो , रागि दो

- १ जीव रागि
- २ अजीय राशि

★

२२

गोल पाईमदाँ आवक के घारह व्रत

पाच अणुद्रत

- | | | |
|---|------------|----------|
| १ | अहिंसा | अणु व्रत |
| २ | मत्य | अणु व्रत |
| ३ | अस्तेय | अणु व्रत |
| ४ | ब्रह्मचर्य | अणु व्रत |
| ५ | अपरिग्रह | अणु व्रत |

तीन गुण व्रत

- | | |
|---|-----------------------|
| १ | दिशा व्रत |
| २ | भोगोपभोग-परिमाण व्रत |
| ३ | अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत |

चार शिक्षा व्रत

- १ सामाजिक व्रत
- २ देशावकाशिक व्रत
- ३ पौष्टि व्रत
- ४ अतिथि मविभाग व्रत

★

२३

बोल तेईसराँ : साधु के पाँच महाव्रत

- १ अहिंसा महाव्रत
- २ सत्य महाव्रत
- ३ अस्तेय महाव्रत
- ४ व्रह्मचर्य महाव्रत
- ५ अपरिग्रह महाव्रत

★

२४

बोल चारीमराँ : प्रत्याख्यान के ४६ भंग

- अक ११ भग नव—एक करण, एक योग से कथन
- १ कर्त्ता नही, मन से
 - २ कर्त्ता नही, वचन से
 - ३ कर्त्ता नही, काय से

अक २१ भग नव—दो करण एक योग से कथन
१ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से
२ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से
३ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, काय से
४ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
५ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
६ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से
७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक २२ भग नव—दो करण दो योग से कथन
१ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से
२ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, काय से
३ कहूँ नहीं, कराऊँ नहीं, वचन से, काय से
४ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
५ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
६ कहूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काय से
७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से
८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काय से
९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से

अक २३ मग तीन—दो करण तीन योग से कथन

- १ कर्लै नहीं, कराडै नहीं,
मन में, वचन में, काय से
- २ कर्टै नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन में, काय में
- ३ कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से, काय में

अक ३१ मग तीन—तीन करण एक योग से कथन

- १ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से
- २ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से
- ३ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक ३२ मग तीन—तीन करण दो योग से कथन

- १ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से
- २ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, काय से
- ३ कर्लै नहीं, कराडै नहीं, अनुमोदूँ नहीं,
वचन से, काय से

अक ३३ भग एक—तीन करण, तीन योग से कथन
१ कस्तु नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं
मन से, वचन से, काय से



२५

रोल पचीमवाँ . चारित्र पाच

- | | | |
|---|-----------------|---------|
| १ | सामायिक | चारित्र |
| २ | ठेबोपस्थापन | चारित्र |
| ३ | परिहार विशुद्धि | चारित्र |
| ४ | सूक्ष्म सपराय | चारित्र |
| ५ | यथास्थात | चारित्र |



पञ्चीस वील

[व्याख्या]

१

श्रोतुं पहला • गति चार

१ नरक गति

२ तिर्यङ्ग गति

३ मनुष्य गति

४ देव गति

व्याख्या

सप्ताह में भान्त जीव है। माधारण व्यक्ति के लिए सबका जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। क्वली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवों को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव में वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह समस्त जीवों को जान सके, देख सके। क्योंकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियों द्वारा सूक्ष्म और अनीन्द्रिय पदार्थों को जाना नहीं जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ जीव का परिज्ञान कैसे हो? शास्त्रवार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवों का चार विभागों में वर्गीकरण कर दिया है। समार के समय जीव इम में समाहित हो जाते हैं। सप्ताहस्य एक भी जीव ऐसा नहीं रहता जो इस बोल में न पा जाना हो।

लोक भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना किलना। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना। परन्तु यहाँ पर गति का

एक विशेष पारिभाषिक ग्रन्थ प्रहण किया गया है। एक भव में दूसरे भव की प्राति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूण फरवे देव भव में जाने का प्रस्थान करता है तो उम क्षण से लेकर जब तक वह देव भव में रहता है, तब तक वी वह अवस्था-विशेष देव गति कहसानी है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

‘नाम वर्म’ की उत्तर प्रश्नतिया म, ‘गति राम’ एक प्रश्नति है। उम गति नाम कम के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यंच में, कभी मनुष्य में और कभी देव योनि में जन्म प्रहण करता है। प्रत ये सब संसारी जीव की अद्वृद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नहीं।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और संसारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहने हो चुका है। वह शुद्ध है, निरङ्गन है, मल-राहत है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार संसार से मुक्त ही गया, वह फिर कभी संसार में नहीं आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ यन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कम-बन्धनों में बढ़ हैं, वे प्रनुद हैं, कम-सहित हैं, मन महिं है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओं को संसारस्थ कहते हैं। प्रम्बुन बोल में इन्हीं संसारों आत्माओं का वर्णन किया गया है। संसारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव।

नारक

नारक भूमि के बागों जीव तरक वह जाते हैं। तरक भूमि सात हैं, जो इस प्रकार है—रत्नप्रभा, धार्वाप्रभा, बालुवाप्रभा, पद्मप्रभा, भूमप्रभा, तम प्रभा और महानम प्रभा।

नारक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव प्रपने भगुम कर्मों का पत पाता है। नारक जीवों में भगुद्दलेश्वा और भगुद्दर्शणाम होते हैं। तरक की बेइना तीन प्रकार की होती है—धोत्र स्वभाव जन्म धीतादि, वर्गस्परजन्य और भगुरजन्य।

असशी जीव मरकर पह्सों भूमि सब, मुनपरिसर्प दूसरी तरफ, पठी तीसरी तरफ, मिहू पौषी तरफ, गार्व पांचवीं तरफ, नारी द्विती तरफ और मनुष्य एवं मत्स्य मानवी तरफ जा सकत हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नहीं बन सकते। तिथश्च और मनुष्य ही बन गवते हैं।

तिर्यङ्गच्च

नारक, मनुष्य और देव वा द्वोड्दश का दोष जिनने भी मंसारी जीव है, वे निर्यंश वहे जाने हैं। नरक-नाति की तरह तिर्यङ्गच्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। निर्यङ्गच जीवों के तीन भेद हैं—जमचर, स्थनचर, और नेचर।

ऐन्द्रिय और विकल्पन्द्रिय जीव भी निर्यङ्गच योगी में समा विष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक वो द्वोड्दशर दोष एम्ब्ल एन्ड्रिय व्रग जीव भी निर्यङ्गच गति में हैं। लोभ

भाषा म, पशु, पक्षी और कीट-पतंगे आदि जीव तिर्यक हैं। तिर्यक अपने सुभावुम् पर्मों के अनुसार प्राय चारों गाँधों में जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र म मनुष्य-जन्म की सब श्रेष्ठ और मव-ज्येष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी संयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त वर मरता है, जबकि अन्य गतियों में यह सम्भव नहीं है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्थ गुण-स्थान से आगे नहीं बढ़ सकते। निर्यक्ष का विकास पाचवें से आगे नहीं। परन्तु मनुष्य में समस्त गुण-स्थान सम्भवित हैं। अत मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एव सर्वज्येष्ठ है।

जन्म के आधार पर मनुष्या के दो भेद हैं—गर्भज और समूच्छिंग। माता और पिता के संयोग से जो जन्म मिलता है, वह गभज कहा जाता है। मनुष्य और निर्यक्ष में ही यह होता है। माता और पिता के संयोग के बिना जो मल-मूत्रादि में मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे संमूचिद्येम कहे जाते हैं। मनुष्य की तरह निर्यक्ष भी समूच्छिंग होते हैं और ये दोनों मनोरहित होने से असत्ता ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्या के दो भेद किये गए हैं—भोग-मूमिज तथा कमभूमिज। भोग भूमि वह है, जहाँ असि कर्म, मर्सि-कर्म और छपि-कर्म नहीं होते। और जहाँ ये होते हैं, वह कर्म भूमि है।

सस्तनि और सम्यता के आधार पर भी मनुष्या के भद्र किये गये हैं। जहाँ विश्वास और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय चारों गतियां में जा सकता है।

देव

देव शब्द भारतीय सस्तनि एव साहित्य में चिरपरिचित है। देवगति में सुन माना गया है। वहाँ दुभ लेद्या और दुभ परिणाम मान गए हैं। वहाँ प्राय माताबेदनीय वाम का उदय माना गया है।

देवा के चार भेद हैं—मवन पति, व्यन्तर, उयोनिष्ट और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। विन्तु घपने द्युमाद्युम कमों क कारण मनुष्य या तियश गति में जाम ले सकता है।

गतिया के कारण

सद्देप में नरक गति के कारण है—महारम्भ, महापरिप्रह। तियश गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—पल्यारम्भ, अतपरिप्रह। देव गति का कारण है—मरण, मपम, मयमामपम—भाववत्व बालतप, और अवाम निर्जरा आदि।



२

गोल दूमरा . जाति पाँच

- | | |
|---------------------|---------------------|
| १ एकेन्द्रिय जाति | ३ त्रीन्द्रिय जाति |
| २ द्वीन्द्रिय जाति | ४ चतुरिन्द्रिय जाति |
| ५ पञ्चेन्द्रिय जाति | |

व्याख्या

जीव अनन्त हैं। वे सभी समाज रही हैं। विकास क्रम के आधार पर समय समारी जीवा को पाँच विभागों में विभक्त किया गया है। समस्त जीवों में चैतन्य गुण समान होने पर भी उम गुण की अभिव्यक्ति में सामनभूत इन्द्रियों के विकास क्रम को लेकर ही समारी जीवा वे यहां पर पाँच भेद दिये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहां पर समूह अर्थ ही ठीक बैठना है। एवेन्ड्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियों का समूह जिन के बैदल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ ममक लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का भाधन। जिम के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होना है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगों की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। किर पाँच ही क्यों? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्नरग है। यहां पर जीवा के जो पाँच भेद दिये गए हैं, वे बहिर्ग इन्द्रियों के आपार पर ही किए हैं।

नाम कर्म को उनार प्रकृतिया में, जानि नाम कम भी एक प्रकृति है। उसके उदय से ही जीवा को एकेद्वय आदि म जन्म घटण करना पड़ता है।

“सेव्हिं द्रुय ची?—पृथ्वी, पानी, पर्यन्त, वायु श्रोग बनम्पति !

द्वितीय जीव—लट, मीप, घस्त फूमि, घुण आदि ।

શ્રીનિદ્રિય જીર—ચીટી, ચીચડ, જૂ, લીણ, મરોડા આદિ !

चतुरन्दिय जीन—पक्षी, मव्वर, भवरा, बिचू आदि।

पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पातु शादि, मनुष्य, देव।

1

三

गोल तीमरा काय छह

१ पृथ्वी काय	४ वायु काय
२ अप् काय	५ वनस्पति काय
३ तेजस राय	६ श्रम काय

દાના

विभिन्न प्रकार के पुद्दगलो से बने शरीरों के द्वारा जीव के जा विभाग होते हैं, उन्हें काय बहने हैं।

१३ वृद्धि है बाय जिन वी, वे जीव पृथ्वी वाय हैं। प्रप (जल) है बाय जिन वी, वे जीव प्रप काय। तेजस (शक्ति) है बाय जिन

की वे जीव, तेजस् वाय । वायु है काय जिनकी, वे जीव, वायु वाय । वनस्पति है काय जिनकी, वे जीव, वनस्पति वाय । अस (गमन-जलन क्रिया युक्त) है काय जिनकी वे जीव, प्रस वाय ।

जीव विज्ञान पर जिनना प्रनुभव्यान् जैन धाराओं में मिलता है, उतना अन्यथा नहीं। अहिंसा-मूलक धर्म के लिए यह आवश्यक भी या, और आज भी है। हिंसा से घबने के लिए जीवों का म्वस्प और जीवों के भेदों को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्र में, जीवा के मुख्य रूप से दो भेद हैं—स्थावर और अस। प्रथम के पाँच काय स्थावर हैं। स्थावर का स्थूल अर्थ है, स्थिर रहने वाले, एवं ही स्थान पर स्थित। जैसे वृक्ष आदि। जो जीव हलन-चनन की क्रिया करते हैं, वे अस हैं। द्विन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव अस हैं। सिद्धान्तानुसार स्थावर नाम कर्म का उदय जिन को हो, वे जीव स्थावर हैं, और जिन को अस नाम कर्म का उदय हो, वे जीव अस हैं। स्थावर एवं अस दो मिलाकर जोवो के छह भेद हो जाते हैं। आगम में इसी को पड़ जीव निकाय कहा है।

पृथ्वी काय—मिट्टी, मुरड, हिंगुल, हरताल, हीरा, पन्ना, सोना, चादी आदि सब पृथ्वीवायिक जीव हैं। मिट्टी के एक कण में भी अमर्त्य पृथक-पृथक जाव होते हैं। पृथ्वी वायिक जीवा को स्व पर शम्भन न लगे, तब तब पृथ्वी सचित्त है। वही अस्थ लगने पर अंचित्त हो जाती है। यही कम जल, तेजम्; वायु और वनस्पति काय के मम्बन्ध में भी है।

महाकाल विद्युति विद्युति विद्युति विद्युति विद्युति विद्युति

भूप वाय—वार्ता का बदल देता वह नहीं है इसने
कुदालावाही का विषय नहीं किया है उसका विषय
प्रधान विषय आवाह है।

तेजवाय—वार्ता का विषय है वह नहीं है इसने इसका विषय
उच्चागत विषय नहीं किया है उसका विषय

पायु वाय—वार्ता का विषय नहीं है इसका विषय
गुजार वायु प्राप्ति विषय विषय है।

वास्त्राति वाय—वार्ता का विषय है इसका विषय
है। इसके बारे में है—

माधारण वनस्पति—वार्ता का विषय है इसका विषय
करते हों, उसे माधारण वनस्पति किया है; वार्ता,
प्राकृत सूनी वनस्पति हों, वनस्पति किया है।

प्रदेशव वनस्पति—वार्ता का विषय है इसका विषय
वर्ता, वेता, लूण, कृषि वनस्पति किया है; वर्ता के विषय
प्रदेश जीव अपने वर्ता का विषय है।

प्रथा वाय—टीविड्युति विद्युति विद्युति विद्युति
वाय है।

13

घोल चौथा • इन्द्रिय पाँच

१ श्रोत्रेन्द्रिय

३ धारणेन्द्रिय

२ चक्षुरिन्द्रिय

४ रसनेन्द्रिय

५ स्पशनेन्द्रिय

व्यासया

भमस्त ससारी जीवो मे समान इन्द्रियाँ नही होनी हैं। किमी
म एक, किसी मे दो, किसी मे तीन, किसी म चार और किसी म
पाँच। किसी जीव मे पाँच से अधिक इन्द्रिय नही हो सकती।
बयोंवा इन्द्रियाँ पाच ही हैं। यहा पर इन्द्रिया के आधार पर
ससारी जीवा वा बर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं क्या वि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य में सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह में जाना जाता है, अथवा जा इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे सख्या में पाच हैं—स्पृशन, रसन, ध्राण, चक्षुप, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाना है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् वर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्रप—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान विया जाता है, देखा जाता है, वह चक्रप् इन्द्रिय है, अर्थान् नेत्र—Sense of sight (Eyes)

13

बोल चौथा • इन्द्रिय पाँच

- | | |
|------------------|-----------------|
| १ थोवेन्द्रिय | ३ ग्राणेन्द्रिय |
| २ चक्षुरिन्द्रिय | ४ रमनेन्द्रिय |
| ५ स्पशनेन्द्रिय | |

स्थान्या

समस्त संसारी जीवा म ममान इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। किसी म एक, किसी म दो, किसी में तीन, किसी म चार और किसी में पाँच। किसी जीव में पाँच से अधिक इन्द्रिय नहीं हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही हैं। यहां पर इन्द्रिया के आधार पर समारी जीवों वा वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र बहते हैं, क्या कि वह ज्ञानादि ऐदव्यय से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, यथवा जा इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय वहा गया है, और वे सरथा में पाच हैं—स्पर्शन रमन, ध्राण, चक्षुप, और थोत्र ।

श्रोत्र—जिस इंद्रिय से शब्द वा ज्ञान किया जाता है, सुना जाना है, वह श्रोत्र इंद्रिय है, अर्थात् वर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुप्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुप् इंद्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)

धारा— जिस इन्द्रिय से गर्व का ज्ञान हितः उत्पन्न है दुर्लभ
जाता है, वह धारण इन्द्रिय है, भर्त्यान् नार—५०० ११ इति
(५००)

रमन—जिस इन्डिय में गम वा ज्ञान रिंग भारत है, ८८
स्थान लिया जाता है, वह रमन इंडिय है, प्रधान रिंग—८८.
of test (Tongue)

सर्वान्—जिस इन्द्रिय से ज्ञान का ज्ञान होता है, वह स्पृशन इन्द्रिय है, परमात्मा—Soul of Nature

इन्द्रियों की तरह मन भी पान का सदृश है ॥१४॥
 इन्द्रिय वयों नहीं माना गया ? मन जीव का कुप्रबन्ध ॥
 परन्तु किर भी रूप प्रादि विषयों में प्रवृत्त होते हैं ॥१५॥
 चक्षु आदि इन्द्रियों का महारथ मैना पड़ा ॥१६॥
 मननव रूप में भी अपने चिरतर शिव वा इदं ॥१७॥
 किर भी अधिकतर मन का बावें हाँड़ियों हाथ ॥१८॥
 चिनन बरना मात्र है । मन उसे इन्द्रिय वस्त्र ॥१९॥
 (एन्द्रिय जैसा) कहा गया है ।

यद्यपि मन पानु प्रोटर पर्याप्ती आदि में भी हानि है लेकिन यह मन से विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। इसका नाड़ी तन्त्र Nervous system और हृतांतरण है जो अधिक विकसित है। मनुष्य में Mental power भी बहुत अचूक है।

मनोविज्ञान के प्रत्युमार मन के तीन भूजाएँ—
चेतन मन conscious, चेतनामूल Unconscious वा अचेतन Un-conscious

ॐ तत् त्वं परम् ब्रह्म एव विदुः एव विजितुः परम् ब्रह्म एव विदुः एव विजितुः

चेतन मन, मन का यह भाग है, जिस में मन की समस्त ज्ञान कियाएं चला करती है। चलना, फिरना, बोनना, लिखना, पटना और सोचना आदि कियाओ वा नियन्त्रण चेतन मन करता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। मे वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएँ तथा वेदनाएँ रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं, किन्तु वे चतना पर आने के लिए तत्पर हैं।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। विचार तथा भावनाएँ न हमे ज्ञात रहती हैं, और न सहज भाव से बाहर ही आती हैं। प्रयत्न विशेष से ही वे चेतना स्तर पर आती हैं।

शास्त्र में मन के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य मन पुद्गलमय होने से जड़ है—ग्रीष्म भाव मन चेतनमय, व्याकि भाव मन ज्ञानावरण का एक क्षयोपशम विशेष है।



५

गोल पाँचधोरे : पर्याप्ति छह

- | | |
|----------------------|--------------------------|
| १ आहार पर्याप्ति | ८ श्वासोच्चवास पर्याप्ति |
| २ शरीर पर्याप्ति | ५ भाषा पर्याप्ति |
| ३ इन्द्रिय पर्याप्ति | ६ मन पर्याप्ति |

व्याख्या

पर्याप्ति आत्मा की एक शक्ति विशेष है। आत्मा जिस शक्ति से पुद्गलों को ग्रहण करता है और उन्हे शरीर आदि अप्य में परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। इस के छह भेद हैं।

आहार पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव आहार योग्य वाले पुद्गलों को ग्रहण कर उन को खल और रस रूप में बदलता है।

शरीर पर्याप्ति—जिस शक्ति के हारा जीव रस रूप में परि णन आहार को रक्त, मास, मज्जा और वीय आदि प्रातुषा में बदलता है।

इन्द्रिय पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव सात घातुओं को स्पर्शन, रसन आदि इन्द्रियों में बदलता है।

श्वासोच्च राग पर्याप्ति—जिस शक्ति के हारा जीव श्वास और उच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, और छोड़ता है।

भाषा पर्याप्ति—जिस शक्ति के हारा जीव भाषा योग्य भाषा वगणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप में परिणत कर के छोड़ता है।

मन पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनोवगणा व पुद्गला वा ग्रहण वरवे मन स्प म बदलता और छोड़ता है।

निन जीवों के वितनी पर्याप्ति होती है? एवेंट्रिय जीव के भाषा और मन को छोड़ वर शेष सभी है। विकलेन्द्रिय (द्वित्रिय संचतुरिन्द्रिय तक) और असज्जी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोड़कर शेष समस्त पर्याप्ति है। सज्जी पञ्चेन्द्रिय जीव के उहों पर्याप्ति होती है।

ससारी जीवा मे ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती है। कोई भी जीव जब अपर्याप्ति दशा मे मरता है तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवों के दो भेद विद्ये हैं—पर्याप्ति और अपर्याप्ति। जिस जीव ने स्वयंपाक पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्ति कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है जो स्वयंग पर्याप्ति को पूण नहीं पर पाया है।



卷之三

- | | |
|-------------------------|----------------------------|
| १ थोथ्र वल प्राप्त | ५ रुद्र इन प्राप्त |
| २ चक्षुपूर्व वल प्राप्त | ६ रवि वल प्राप्त |
| ३ घ्राण वल प्राप्त | ७ हनु इन प्राप्त |
| ४ रमन वल प्राप्त | ८ रिति-सूर्यासु वल प्राप्त |
| ५ स्पर्शन वल प्राप्त | ९ रुद्र वल प्राप्त |

七

प्राण अर्थात् जीवन में एक प्रिय घटक है सयोग से जीव जीवित है, द्वारा प्रिय प्रदाता जीव, बहु प्राण है। प्राण जीव के बाह्य प्रकृति। इसे प्रिया जीव जीवित नहीं रहता।

शान्ति में प्राण के ही दैर्घ्य और भाव। जो प्राण
के बल सहार अवस्था में ही लिया है, मुख दाना में रही
वह द्रव्य प्राण वहाँ जाता है।

पांच इन्द्रिय, तीन पौर द्वयोः पश्चाद्वाम नष्टा प्रायुष्य
सद्ग मिलकर दद्धा द्वय्य प्राप्ते ।

जो प्राण मुक्त दशा में रहते हैं वाय रहते हैं
प्राण हैं। वयोऽकि वे आत्मा के स्वरूप हैं। जीव
दर्शन, चारित्र और वीय।

1

चौल आठगाँ • योग पन्द्रह

चार मनवे —

- १ रात्य मनो योग
 - २ असत्य मनोयोग
 - ३ मिथ मनोयोग
 - ४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

- १ सत्य वचन योग
 - २ असत्य वचन योग
 - ३ मिथ वचन योग
 - ४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

- १ औदारिक काय योग
 - २ औदारिक-मिथ काय योग
 - ३ वैक्रिय काय योग

* * * * *

३

हात में ही ; उसकी दृश्य

प्रथम शब्द —

- १ अर्जि देव
- २ वल देव
- ३ अर्जि देव
- ४ अर्जि देव
- ५ केवल देव

द्वितीय शब्द —

- १ अर्जि देव
- २ भूति देव
- ३ अर्जि देव (सिद्धदेव)

तीसरा शब्द

- १ अर्जुन देव
- २ अर्जुन देव
- ३ अर्जुन देव
- ४ देवल देव

हास्य

ज्ञान स्वरूप व्यापार का उपयोग कहने हैं। जिसी भी वस्तु का सामान्य या विशेष स्वरूप जानलेना उत्तमाग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान पौर दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या मातारोपयोग कहत है। पदार्थों के विशेष परम विशेष युक्त पौर विशेष चिकित्सा का ज्ञान होना—मातारोपयोग है। पदार्थों के गामान्य वायर को दर्शन का निराकारवाग कहत है।

जन दर्शन में वस्तु सामान्य विशेषपर्व मानी है। जब जैवना वस्तु के विशेष पर्व का मुख्य स्वरूप पौर उग के सामान्य पर्व की गोण स्वरूप में प्रहृण करती है तो जैवना के उग अभाव का ज्ञानापयोग वहाँ जाता है। परम्परा जब खुना जिसी भी वस्तु के सामान्य पर्व को मुख्य स्वरूप में प्रौर उपरे विशेष पर्व को गोण स्वरूप में प्रहृण करती है, तब उग दर्शनापयोग कहने ? ज्ञान साक्षात् पौर दर्शन निराकार होना है।

कृति शान—इन्द्रिय पौर मन की महावता हे होरे वाना एवं पदार्थों का ज्ञान। मन से इन्हीं पर्यार्थों का भी परामर्श ज्ञानिया जा गवना है।

श्रुत शान—जो ज्ञान युक्तानुभारी है। जिस से गम्भीर पौर यथैर्व वा गम्भीर्य जाना जाता है। जो मनि ज्ञान के थार द्वाना है।

मनि यौर यूत वा परम्परा गम्भीर्य है। दोनों में यार्थ वारण भाव है। मनि ज्ञान वारण है और यूत ज्ञान कार्य है। दागान्ना ज्ञान है।

आवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की महायता के बिना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक स्पी दृश्य का ज्ञान।

मन पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहाया के मिला आत्मा द्वारा सज्जी जीवा के मनोगत भावा को जानने वाला ज्ञान।

केवल ज्ञान—मूल, अमूल, सूक्ष्म, स्थूल प्रादि विकाल-वर्ती ममस्त पदाथ और उन की भग्नां पर्यायों को एक माथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् भग्नां पदाथ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को विना विग्मी वाह्य साधन के माध्यात् आत्मा द्वारा एक माथ जान लेने वाला ज्ञान।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अवधि और मन पर्याय विकल घपूण प्रत्यक्ष है, और केवल ज्ञान सकल पूण प्रत्यक्ष है।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि नम से मति अनान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान कहे जाते हैं। यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि कुत्सित ज्ञान मम भना जाएँ। कुत्सित ज्ञान का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान।

चक्षुर दर्शन—चक्षुदर्शनावरण कम के क्षयोपशम होने पर
चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अचक्षुर दर्शन—प्रवक्षुदर्शनावरण वर्म के क्षयोपगम हीने पर चक्षु को छोड़ कर धौप इंद्रियों में और मन से पदार्थों का जो सामान्य रूप में बोध होता है।

अथधि दर्शन—प्रबधिदर्शनावरण कर्म के संयोगम होने पर, इन्द्रिय पौर मन की महायता के बिना उनी पदार्थों का जा सामाय थोप होगा है ।

कौल दर्शन—वेषन दर्शनावरण कर्म के धय होने पर मालान् प्रामा द्वारा सबसे पदार्थों का जो मामाय थोप होता है, उसे वेषन अर्णन करता है ।



१०

गोल दग्धाँ वर्म आठ

१ ज्ञानावरण वर्म	५ आयुष् वर्म
२ दर्शनावरण वर्म	६ नाम वर्म
३ वेदनीय वर्म	७ गोप्र वर्म
४ पोहनीय वर्म	८ अन्तराय वर्म

प्राच्छा

मिथ्यात्व, कथाय पौर योग प्रादि कारणों ने जीव के द्वारा जो विद्या जाता है, वह वर्म है । जीव प्रीत वर्म का यह गम्भीर ठीक वैमा ही होना है, जैसा दृष्टि पौर पानी का भयवा पर्मिन पौर खोह पिंगड़ का । याम-गम्भद पुद्गल दृष्टि को वर्मे बढ़ाते हैं ।

परपरि जीव पौर वर्म का गम्भीर घनाति बात में है परन्तु प्रपेत्र का यह गम्भीर प्रनात्र बात नह रहेगा, सो बात नहीं

है। ज्ञान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ आनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध किया के द्वारा जब उसे मेरे मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। अम-सहित जीव अगुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। मायना में द्वारा जीव शुद्ध, शुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मृत्यु रूप से कम के दो भेद हैं—भाव कम और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और वयाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निपित्त से बम वग्गा के पुटगला वी एवं विद्यप परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कम के ग्राठ भेद है, वे द्रव्य कम हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण का याच्छादित बरने वाला कर्म। जिम प्रकार आत्म पर कष्टे की पट्टी लपेटने से वस्तुग्रा के देखन में इकावट पड़नी है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष वोध बरने से इकावट पड़ती है।

जैसे मधुन गादला से सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उनना अवश्य रहता है, विं जिस से दिन रात का भेद समझा जा सके। ये मे ही कैसा भी प्रगाह ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा में इनना ज्ञान तो अवश्य रहता है, विं जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की मामूल्य वोपरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को छवने वाला कर्म। यह कर्म द्वारा पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा में दर्शन करने में रका-

है। खान में जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अतादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध किया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ना है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, शुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र में मुख्य रूप से कम वे दो भेद हैं—भाव कम और द्रव्य कम। राग, ह्रेष और वपाय आदि भाव कर्म हैं। भावकम के निमित्त से कम वगाना के पुद्गला की एक विशेष परिणति द्रव्य कम है। ऊपर जा कम के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण का आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुया के दृष्टि में रुक्षावट पड़ती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने से रुक्षावट पड़ती है।

जैसे मधन गाढ़ला में सूख के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उनना अवश्य रहता है, वि जिस में दिन रात का भेद समझा जा सके। वसे ही कैमा भी प्रगाढ़ ज्ञानावरण कम हो, उस के रहते हुए भी आत्मा में इनना ज्ञान तो अवश्य रहता है, वि जिस से वह जड़ पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की माम्प्रान्य बोधरूप दर्शन शक्ति की, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कम। यह कर्म द्वारा पात्र के ममान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने में रका-

बट डालना है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थों या सामान्य वस्तु करने में ज्ञावट डालना है।

वेदनीय कर्म—जो प्रनुदून प्रोर प्रतिकृति विद्यों से अद्वितीय सुख और दुःख रूप में वेदन प्रथमता प्रनुभव रिति जलत। यह कर्म मधु लिप्त तत्त्ववार की पार को चाटन कहलान है। इसके समय क्षण भर को सुख, परतु बाद में दुःख होता है। इसके बर्द्धे कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म प्राचीन श्रद्धालुओं ने ही, विन्तु सुख भी प्राचीन दुःख भी ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म प्रात्मा को माहनीयता देता है, जो मरण की शक्ति देता है, यह कर्म माहनीय है। यह कर्म भ्रष्ट कर्तों के लिए दृढ़ है। यह मदिरा के मटण होता है। वैसे महिला भ्रष्ट के लिए विकान हो जाता है, वैसे वी माहनीय होता है। यह कर्म प्रात्मा के घटान की शक्ति द्वारा दूर करता है।

आयुप कर्म—जिस कर्म के रहन प्राण का आयुर अन्त में जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। इसके लिए कर्म ने गमान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय होता है, जो भी जीव वो एकेद्वितीय यादि नानाविधि जीता जा सकता है। यह कर्म चित्रकार के समान नाम है, जो वैष्णवी नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम है, जो वैष्णवी का रूप बनाता है।

गोप्त्र कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव जीवन की उच्च और नीच स्थिति को प्राप्त करता है, यह कर्म कुम्भकार के ममान है। जैसे कुम्भकार अच्छे बुरे घड़ा को बनाता है, वैसे ही यह कर्म भी जीव को उच्च और नीच बनाता रहता है।

अतराय कर्म—जिस क्रम के उदय से आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीष्य शक्ति का घात होता है, अथवा इनमें रकावट पड़ती है। यह क्रम भण्डारी के समान है। राजा देता है, नण्डारी बाधा डालता है। वैसे ही इस क्रम से दान, लाभ आदि म बाधा पड़ती है।



29

नोल ग्यारहवाँ गुण स्थान चौंदह

- १ मिथ्या-हृष्टि गुण स्थान
 - २ सास्वादन सम्यग्-हृष्टि गुण स्थान
 - ३ सम्यग् भिथ्या-हृष्टि (मिथ्र) गुण स्थान
 - ४ अविरत सम्यग्-हृष्टि गुण स्थान
 - ५ देश विरत गुण स्थान
 - ६ प्रमत्त समयत गुण स्थान
 - ७ अप्रमत्त समयत गुण स्थान

- ८ निवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान
- ९ अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान
- १० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान
- ११ उपशान्त मोह-गुण स्थान
- १२ क्षीर-मोह गुण स्थान
- १३ सयोगी केवली गुण स्थान
- १४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लकर गुदतम दशा तक, मनुष्य
अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक प्रौर जीव जी दद मिर्दिनि
से लेकर मुक्ति स्थिति तक—पहुँचने के लिए छोटे दृग्दात्म
stages मानी गई है, जिन्हे गुण स्थान अर्थात् विश्वास दृग्दात्म
कहते हैं। गुणस्थान का पर्याप्त है—आत्मा की निर्विद्येऽ। दृग्
(आत्मशक्ति) के स्थान (क्रमिक विकास) के दृग्दात्म
कहा जाता है।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (उत्तर दृष्टि के दिनेन्द्रिय) है,
दृष्टि जिसकी वह मिथ्या दृष्टि, उसका दृग्दात्म मिथ्या दृष्टि
गुणस्थान । यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्बद्ध दृष्टि गुणस्थान—मन्दूक्य के छाप्याद पाद
सहित जो दृष्टि वह सास्वादन । सम्बद्धिन्द्रिय दृग्दात्म सम्बद्ध
मन्दूक्य दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुवधा क्षार के उदय से मन्दूक्य
पराङ्मुख मिथ्यात्व की ओर भुक्त दृष्टि के दिनेन्द्रिय ।

सम्यग् मिथ्या हाए गुण स्वान—यह आत्मा को सदिग्द,
दोनायमान अवस्था है। इमम् विचार दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती
है। इसमें स्थित जीव तत्त्वों पर न एकान्त र्घचि करता है, न
एकात अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित। त्याग रहित है सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उभका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग्दृष्टि विचार की प्रबस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यग है, पर आचरण नहीं।

देश विरत गुण स्थान—जिसकी विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरति, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसमें देश-रूप में, अक्षर रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त संयत गुण स्थल—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान वा प्रमत्त संयत गुणस्थान कहने हैं। इममें मध्य रूप से, पूर्ण रूप से चारित्र आ जाता है। सब विरत बन जाता है।

अप्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद मुक्त साधु के गुणस्थान को अप्रमत्त संयत गुण स्थान कहते हैं। इसमें प्रमाद का अभाव होते से आत्मा और भी अधिक विशद्ध होता है।

निर्वृति बादर सम्पराय गुणस्थान—बादर का अर्थ स्थूल है, और सम्पराय का अथ व्याय है। दशम गुण स्थान सूक्ष्म सम्पराय की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थूल व्याय ना प्रस्तित्व होने के कारण इसे बादर सम्पराय घृनते हैं। निवृति का अथ भिनता है।

प्रत प्रस्तुत गुण स्थान के सम समय-न्यर्ती गमस्त् जीवों के प्रध्यवसाय भिन्न अथान् शूदि वाने हान है ।

भनिरुति वादर समाय गुण स्थान— प्रस्तुत गुण स्थान म भी वादर नम्पराय अर्थात् स्वूप कथाय का अनितत रहता है । इन यह भी वादर-नम्पराय कहताना है । पूरबतों भनिरुति शब्द का अर्थ भनिता है । इन नवम गुणस्थान मे जो जीव नमग पथ-न्यर्ती होने हैं उन सबके प्रध्यवसाय एवं समान अर्थात् तुन्य शूदि वाने होने हैं ।

दूसर समाय गुण स्थान— मूर्ख एवं सम्पराय काम (पात्र लोभ) है जिसमें वह मूर्ख सम्पराय गुण स्थान । इसमें चार कथाया में से बचत मूर्ख साक्षर है जाना है ।

उपशत्रु माह गुण स्थान— उपशत्रु अर्थात् अन्तमुद्दृत एवं निए एवं रह हो गया है, माह कम जिसमें, वह उपशत्रु माह, उमडा गुणस्थान, उपशत्रु मोह गुणस्थान, इतम माह (आम) एवं उपशत्रु हाना है, अर्थ नहीं ।

क्षील मोह गुण स्थान— क्षील अर्थात् ग्रस्त नह हो हो गया है, माह कम जिसका, वह क्षील माह, उमडा गुण स्थान दोला मोह गुण स्थान । इसमें गोह गर्वया नह हो जाता है ।

मयोगी केवली गुण स्थान— योग का अर्थ मन, वचन और काय का अध्यापार है । मयोगी अर्थात् योग युक्त है जो वह मयोगी केवली, उमडा गुण स्थान, गयोगी केवली इसमें आया, और सर्व दर्शी हो जाता है ।

अयोगी केवली गुण स्थान—अयोगी, योग रहत। योग रहत है, केवली जिसमे, वह अयोगी केवली, उसका गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान। इसमे आत्मा शैलेश अधर्ति मेर पवन ममान निष्क्रम्प हो जाता है। इसके बाद आत्मा गुणस्थानीन होकर सर्वथा शुद्ध, मुक्त, परमात्मा रह जाता है।



23

चौल नारहवाँ : पॉच इन्द्रियों के तर्हस निषय
थोथ्र इन्द्रिय के तीन विषय—

- १ जीव शब्द
 - २ अजीव शब्द
 - ३ मिथ्र शब्द

चक्रपू-इन्द्रिय के पाँच विषय—

- १ कृष्ण वर्ण
२ नीलवर्ण
३ रक्त वर्ण
४ पीतवर्ण
५ श्वेतवर्ण

थ्याल्पा

इन्द्रिय पाँच हैं, उन मुख्यतया उनके विषय भी पाँच हैं—
शब्द, वर्ण, गाप, रस और सर्व। विस्तार की रफ़ाता से इनके
वेईग विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय वेईग और विकार
का गो चालीम होते हैं।

मंगार के समूल पदार्थ के विभक्त हैं—मूल और
अमूल। जिनमें वर्ण गव्य, रस और साथ है, वह मूल, ऐप गभी
अमूल। मूल अर्थात् पौदगनिक पदार्थ ही इन्द्रिय-शास्त्र ही
मत्ते हैं, अमूल नहीं,—जैसे प्रात्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपन विषय का ही प्रहण करती है। दूसरे
के विषय को नहीं। रूप का चमुचूप् ही प्रहण करती है। ध्यान एवं
रमन आदि नहीं। मध्यम यही त्रय है।

विकार

पाँच इन्द्रियों के दो सो चालीम विकार हात हैं और वे इस
प्रकार समझने चाहिए—

आव इन्द्रिय के सीन विषयों के १० विकार—जीव शब्द,
अजीव शब्द और मिथ शब्द। तीन शुभ और तान शुभ। इन
छह पर राग और छह पर द्वय। ये १२ विकार हुए।

चमुचूप् इन्द्रिय के पाँच विषयों के ६० विकार—५ सचित,
५ असचित और ५ मिथ। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन
३० पर राग और ३० पर द्वेरा। ये ६० विकार हुए।

॥२६॥ इन दो विषयों के १२ विकार—२ सर्वित्

२ अचित् और २ मिथ् । इन छह पर राग और छट पर हैं ।
ये १८ विकार हैं ।

रमन इद्रिय के पाच विषयों के ६० विकार—२ सर्वित्
२ अचित् और ४ मिथ् । १५ शुभ और १५ अशुभ । ३० राग
राग और २० पर हैं । ये ६० विकार हैं ।

स्पृशन इद्रिय के आठ विषयों के ६६ विकार—८ सर्वित्
८ अचित् और ८ मिथ् । १४ शुभ और १४ अशुभ, १२ राग
४८ पर राग और ४८ पर हैं । ये ६६ विकार हैं ।



१३

पाल तेरहवाँ टग प्रमार का मिथ्यान्व

- १ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्
- २ जजीव को जीव समझना मिथ्यात्
- ३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्
- ४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्
- ५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्
- ६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्
- ७ ससार-मार्ग को मोक्ष मार्ग समझना मिथ्यात्
- ८ मोक्ष मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्

४ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

१४५

जीव के विपरीत श्रद्धान्तरूप परिणाम का मिथ्यात्व बहुगया है। मिथ्यात्व सत्तार का बीज है, वारण है। जब तक आत्मा में मिथ्यात्व का शल्य है, तब तक वह शुद्ध, निर्मल और मलमुक्त नहीं बन सकता।

अन्तर्भुव म तर्भुव बुद्धि रखना, अधम में धर्म बुद्धि रखना, अदेव में देवबुद्धि रखना और अगुर म गुरुबुद्धि रखना, मिथ्यात्व है।

तत्त्व—यहाँ पर तत्त्व का अध्य जीव, अजोव आदि तत्त्व सम्भना चाहिए।

दूय—कर्म स्वप दातु के विजेता, अष्टादश दोष-शून्य, रावण सवदर्दी, वीतराग प्ररिहृत भगवान् देव है।

गुरु—कनक और बाला वे स्थानों पश्च महात्रत का पालन वाले, पश्च समिति और नीा गुरुि के धारक सन्त गुरु है।

धर्म—ग्रन्थ भाषण, दयामय, विनय मूलक, कम वा नाश
वरने वाला पौर माथ की पोर ल जाने वाला नह्य धर्म है।

पहुँचना अवश्यक है। निश्चय हृषि से नो भातमा स्वयं ही देता है, स्वयं ही गुहा है, और स्वयं ही धर्म है।

प्रस्तुत थोड़े में यह प्रकार के मिथ्यात्म का वर्णन किया गया

है। जीव को जीव और प्रजीव को प्रजीव समझना सम्भव न है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार प्रजीव का जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथायदृष्टि सम्भवत्व है, और विपरीतदृष्टि मिथ्यात्व है। सम्भव यो नहेत्र है, और मिथ्यात्व सासारहेतु।

इसी प्रकार धर्म प्रीत शर्म, माधु और ग्रामाधु, समाज और मातृ नृथा मुक्त और अमुक्त के विषय में भी समझ ल। यदि इनमें यथायदृष्टि है, तो वह सम्भवत्व है और यदि इनमें विपरीतदृष्टि है तो वह मिथ्यात्व है।



१४

बोल चाँटहाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद नव तत्त्व

- | | | | |
|---|--------------|---|----------------|
| १ | जीव तत्त्व | ५ | आत्मव तत्त्व |
| २ | अजीव तत्त्व | ६ | मवर तत्त्व |
| ३ | पुण्य तत्त्व | ७ | निर्जरा तत्त्व |
| ४ | पाप तत्त्व | ८ | वन्ध तत्त्व |
| | | ९ | मोभ तत्त्व |

दराख्या

यथाय सद् यस्तु यो तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्त्व हैं। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य मुख देने वाला है। पाप दुःख देने वाला है। प्राकृत, नृभ और प्राणुभ वर्गों के

आने का द्वार है। मयर, आत्मव का निरोध है। एक देण में
वर्मों का आत्मा मे अनुग्रहोना निजरा है। वन्ध, आत्मा और वर्म
पुदगल वा परम्पर सम्बन्ध है। माझ, मम्पूर्ण वर्मों का धर्य है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

- १ सूक्ष्म एवेन्ड्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- २ वादर एवेन्ड्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ३ द्वीन्द्रिय वे दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ४ श्रीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ५ चतुरिन्द्रिय वे दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ६ अमज्जी पचेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
- ७ मज्जी पञ्चेन्द्रिय वे दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

पाठ्य

एवेन्ड्रिय जीवा वे दो भेद हैं—सूक्ष्म और वादर। व्यवहार
इसि मे सूक्ष्म का पर्य है—प्राण्या मे न दीप्ति वाने जीव और
वादर का पर्य है—स्थूल जाति। परन्तु “ग्रन्थ वी दृष्टि म जिन्ह
सूक्ष्म नाम वर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्ह वादर नाम
वर्म का उदय हो व वादर। वादर जीव न यगीर मो अलग अनुग्र
नही दम जाति। किन्तु व गमुदाय रूप म ही दम जात है। सूक्ष्म
जीव सूक्ष्म नाम व्यापी है। वादर नाम क एक देण मे है।

अजीव तत्व के चौदह भेद-

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश
- ३ प्रदेश

१ दशर्थी काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

- १ स्कन्ध
- २ देश

प्रदेश :

परमाणु

हयारया

स्वन्ध—स्वन्ध के दो अर्थ हैं—एक तो ग्रामण्ड वस्तु को स्वन्ध बहने हैं, दूसरा अलग अलग अवयव एकत्रित होकर जो एक अवयवी अर्थात् एक समूह बन जाता है, उम मुदिन अवस्था का नाम भी स्वन्ध है।

देश—स्वाध या एक क्षतिपूरण भाग

प्रदेश—निरक्षा या, अर्थात् जिस अंग का दूसरा अंग नहीं हो सकता। यह माध्य का मामानिमूम्य विभाग है।

परमाणु—प्रदेश और परमाणु एक ही हैं, परतु अतः इनमें ही है कि जब तक वह स्कॉप से मलग रहता है, तब तब प्रदेश और जब स्कॉप में प्रवाह हो जाता है, तब उसे परमाणु कहते हैं। “स्कॉपसंयुक्तं प्रदेशं, स्कॉपं विविद्धं परमाणु ।”

पुद्गलामित्राय म स्वयं, दण, प्रदा का व्यवहार स्पष्टत
परिनिर्भासा हा जाता है। किन्तु परमामित्राय आदि अमूल्य
पदार्थों म यह गब व्यवहार बुद्धिपरिवलित होना है। वयाकि
वे मूल्य अस्त्रपदार्थ पश्चार्य हैं। प्रगण्ड पदार्थे अनादि अनुत्त होना
है, वह इन्हीं पदार्थों ए मिल कर नहीं बनता। यत उपर्ये
दा और प्रेता आदि मात्र बुद्धिपरिवलित ही होने हैं, वास्तविक

व्याख्या

पुण्य सुख रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बधने वाला शुभ कर्म। पुण्य में आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और मुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते हैं।

यहाँ पुण्य के जा नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव में पुण्य के भेद नहीं, किंतु पुण्य के कारण हैं, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणों में पुण्य वा बन्ध कर सकता है। किमी दु खिन को ग्रथवा भदाषारी व्यक्ति को स्थान, शश्या और वस्त्र देने से, शरीर में किमी की सेवा करने में, मधुर एवं हिनकर वाणी बोनने से, शुभ विचार का चिन्तन करन से और किमी पूज्य पुरुष को वादन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण शुभ ग्राध, शुभ रस, शुभ स्तर्ण, मीमांस्य, सुम्वरं, आदेय, या आदि इन प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को वौपते ममय दुःख और भोगने ममय सुन मिलता है। आत्म विकास में पुण्य क्यन्ति निमित्त है, अत उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था में पुण्य भी हैय है।

पाप तत्त्व के अठारह भेद

- १ प्राणातिपाति (हिसा)
- २ मृपावाद (झूठ)
- ३ अदत्तादान (चोरी)
- ४ मैथुन (व्यभिचार)
- ५ परिप्रह (ममताभाव)
- ६ ऋषि
- ७ मान
- ८ माया
- ९ लोभ
- १० राग (मनोज वस्तु पर स्नेह)
- ११ द्वेष (अमनोज वस्तु पर द्वेष)
- १२ कलह (खलेश, जगड़ा)
- १३ अभ्याख्यान (झूठा कलब लगाना)
- १४ पैशुन्य (दूसरे की चुगली करना)
- १५ पर-परिवाद (अवणवाद, निन्दा)
- १६ रति-अरति (शब्दादि मनोज पर प्रीति, अमनोज पर अप्रीति)

१७ माया मृप्या (कपट-सहित मिथ्या भाषण)
 १८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुथर्म पर थदा)

३४८

अनुभ योग से बैधने वाले अशुभ कम को पाप कहते हैं। व्योक्ति वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुःख और पीड़ा मिलती है। पाप बाधते समय सुखवर चिन्ता भोगते समय दुःखवर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाना है, और ज्ञानावरण दशनावरण, अमानावेदनीय, माहनीय, नरक गति, तिष्यंचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाना है। पापस्थानो के मेवन से जीव भारी हा जाना है, और नीच गति में जाना है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाना है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेतु ही होना है, कभी उपादेय नहीं होना।

पाप तत्त्व वे ये अटारह में पाप दर्थ के कारण हैं। कारण म काय का उपचार मानकर ही पापनत्त्व के भेद बनाए गए हैं।

आख्य तर्त्व के बीस भद्र

पाँच अद्वृत—

१ प्राणात्मिपाद

८ मृपादाद

३ अदत्तादाम

४ मैथुन

५ परिग्रह

पाच इन्द्रिय—

१ शोशेन्द्रिय प्रवृत्ति

२ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति

३ श्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति

४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति

५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

षड्च आस्थव—

१ मिथ्यात्व आस्थव

२ अविरति आस्थव

३ प्रमाद आस्थव

४ कपाय आस्थव

५ अशुभ योग आस्थव

तीन योग—

१ मन प्रवृत्ति

२ धन्वन प्रवृत्ति

३ काय प्रवृत्ति

दो अयतना—

- १ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना।
 - २ सूचि कुशाय मात्र, अयतना से लेना,
रखना।

१०४

जिन दारणा के द्वारा आत्मा में कर्म मल याना है, वे कारण आम्बव कहनात हैं। जीव रूप तालाब में, कर्म रज रूप जल, हिंसा असत्य आदि आम्बव द्वारा रूप नाली में आना रहता है। आम्बव में आत्मा मलिन बनता है क्योंकि आम्बव से वर्मों का निरन्तर मञ्चय होता रहता है।

हिसा करना, भूठ लेना, चोरी करना, व्यापार करना और परिषट का सचय करना—ये पांच अन्तर्राष्ट्रीय ग्राम्यव देशों में आम हैं।

पांच इन्द्रिया को यदि वश में नहीं रखा जाना, उनका निष्ठ्रह नहीं विया जाना, उन पर समयम वा अवृत्त नहीं रखा जाता, यदि वे खुली छोड़ दी जाती हैं, तो वे कमवच में निमिन होने से आस्थवस्तु हैं।

विषरीत श्रद्धान्, विरर्ति, (प्रसंयम), प्रमाद, वृषाय और
श्राव्युभ योग—ये पाची आसव रूप हैं।

मन, वचन और काय की अद्भुत प्रवृत्ति भी आखिर रूप है।
कर्म व्यवहार का कारण है।

रजाहरण, पात्र आदि भाषणोपकरण और कुश = दृष्टि,

मूर्चि = सूर्य ई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविदेष से ली जानी है और अविदेष में रखी जानी है, तो यह भी आखब है।

इन बीस कारणों में आत्मा कर्मों का मन्त्रय करता है, परन्तु ये आखब हैं। आखब सासार का नारण है। इगरे सासार की वृद्धि होनी है।

सबर के बीस भेद

पाच वर्त—

- १ प्राणातिपात्र विरमण
- २ मृपावाद विरमण
- ३ अदत्तादान विरमण
- ४ अद्वृत्यचर्य विरमण
- ५ परिग्रह विरमण

पाच इन्द्रिय—

- १ शोशन्दिय निप्रह
- २ चक्षुरिन्द्रिय निप्रह
- ३ ध्राणेन्द्रिय निप्रह
- ४ रसनेन्द्रिय निप्रह
- ५ स्पशनेन्द्रिय निप्रह

पाँच मवर—

- १ सम्यक्त्व सवर
 - २ द्रवत सवर
 - ३ अप्रमाद सवर
 - ४ अकपाय सवर
 - ५ शुभयोग सवर

तोन योग—

- १ मनो निग्रह
२ वचन निग्रह
३ काय निग्रह

दो यतना—

- १ भाष्णोपकरण, यतना से लेना,
रखना ।
 - २ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से
लेना, रखना ।

બાળપ્રદીપ

आस्त्रव का निरोप सबर है। सबर आस्त्रव का विरोधी तत्व है। सबर का प्रर्य है, सबरण अर्थात् संयम। जिन कारण से आस्त्रव को रोका जाता है, वे सबर कहे जाते हैं।

जीव स्वप्न तालाब में, कर्म-रज स्वप्न जल को आने से सबर
रूप डाट थे द्वारा रोकना, उसे सबर कहते हैं। सबर से श्रात्मा

शुद्ध एवं निमित बनता है। वर्णाक मध्य की भाषणों में इस शब्द प्रात्मा में नहीं आ पाता।

हिंसा से विराति, प्रसाध्य से विराति, चारी से विराति, प्रभृत्यर्थ सु विराति पौरे परिप्रह से विराति—ये तीव्र द्वारा रूप सवर हैं। शब्द धम वा कारण है।

पीच इन्द्रियों का निश्चक रुप, उनकी प्रगुण प्रशृति वा राक्षना—यह पीच इन्द्रियों का निरोधक्षय सवर है। निष्ठृत इन्द्रिय सवरहर हैं।

यथार्थ अद्वान, विराति (शत), प्रमाद प्रकाश और पूर्ख योग—ये पीच सवर हैं। वयाकि इनमें प्रात्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन निरोध और वायन्यम—ये तीनों भी सवर रूप हैं। इन तीनों योगों का पुरुषत्व सवर है।

यदि तत्त्वदृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र प्रात्मव है। अते ही वह शुभ हो, या प्रगुण। शुभ योग पूर्णामव है और प्रगुण योग पापालव। यहाँ शुभ योग को जो संवर कहा है, वह शुभ में निवृत्तिरूप है। अत शुभ की दुःख में लक्षणा है।

रजोहृतण, पात्र भादि भण्डापर्यन तथा शूर्ई भादि ग्राय निमी भी वस्तु को यतना से तीनों और यतना से रेतना—यह भी सवर है।

इन बीम कारणों से प्रात्मा प्रालव वो रोकता है। अत ये सवर हैं। संवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध शापना गो समार के द्वन्द्वन बट जाने हैं।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

- १ अनशन तप (उपवास आदि) •
- २ ऊनोदरी तप (भूख से कम खाना)
- ३ भिक्षाचरी तप (निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना)
- ४ रसपरित्याग तप (सुस्वादु भोजन का त्याग)
- ५ कायक्लेश तप (वीरासन आदि करना)
- ६ प्रतिसलीनता तप (एकान्त शय्यासन)
- ७ प्रायशिच्छत तप (दोषों की आलोचनादि के द्वारा शुद्धि)
- ८ विनय तप (गुरु आदि की भक्ति)
- ९ वैयावृत्य तप (आचार्य आदि वी सेवा)
- १० स्वाध्याय तप (शास्त्र वाचनादि)
- ११ ध्यान तप (मन की एकाग्रता)
- १२ व्युत्सर्ग तप (शरीर के व्यापार आदि का त्याग)

व्याख्या

वर्म-वगणा का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना, निर्जरा है। जीव रूप वस्त्र को वर्म रूप मल लगा हुआ है। ज्ञान रूप जल और तप रूप सातुन से उसको धुँढ़ किया जाता है। यह निजरा तत्त्व को मध्यमने के लिए एक रूपक है।

निजरा दो प्रकार की है—सकाम और प्रकाम । सबर-मूर्त्रवा निजरा सकाम है, और विना विवेक वे, विना संयम वे जो कष्ट महन किया जाना है, वह प्रकाम निजरा है ।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है । प्रति निजरा की व्याख्या परतों हुए प्रस्तुत बोल में अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायशिच्छा आदि द्वह प्रकार का प्राभ्यातर तप बताया गया है । यह तप कर्म निजरा का हतु है, कारण है । कारण में काय का उपचार करने से यहां पर तप को निजरा बहा गया है ।

कर्म परमाणुओं का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निजरा है, और सर्वेषा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है । देश मुक्ति निजरा और सब मुक्ति मोक्ष है ।

बन्ध तत्त्व के चार मैद

- १ प्रकृति बन्ध
- २ स्थिति बन्ध
- ३ अनुभाग बन्ध
- ४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म बगणा और आत्मा का अन्यान्यानुप्रवेश रूप जो परम्पर मन्वाद है, वह बन्ध कहाना है । क्षय और योग से जीव कर्म पुद्गला को प्रहृण करता है । नोर और क्षीर की तरह अथवा ग्रन्ति और लोह पिण्ड जी तरह कर्म पुद्गल और शारम-

प्रदेशो वा जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे काई अधिकारी वर पर तल सगाहर भूमि में सेटा है, तो भूल डारों और दोसरे के विपक्ष जाती है। इसी प्रकार कथाय और योग में पात्र प्रदेश में जब काम्पन होता है, तब धारमा के साथ कर्म वा बन्ध होता है। बन्ध तत्त्व के चार भेद है—

प्रहति यज्ञ—जीव ने द्वारा प्रहण किए हुए कर्म पुद्गत में ज्ञानादरणादि स्पष्ट भिन्न भिन्न स्वभाव का प्रर्थना दर्शिता कर पैदा होता ।

स्थिति यज्ञ—जीव के द्वारा प्रहण किए हुए कर्म पुद्गत में अमुक वाल सब कामने स्वभाव का परिस्थान न करते हुए जीव के साथ सगे रहने की काल मर्यादा ।

अनुभाग यज्ञ—जीव के द्वारा प्रहण किए हुए कर्म-पुद्गत में तत्त्व एवं मन्द कर देने की दक्षिणा। इसको अनुभाव यज्ञ और रस बन्ध भी कहते हैं ।

प्रदेश यज्ञ—जीव के द्वारा प्रहण किए हुए कर्म-पुद्गत के परमाणुओं का कर्म या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु याले कर्म-स्वयं का सम्बन्ध होना ।

इन चार यज्ञों में से प्रकृति यज्ञ और प्रदेश यज्ञ योग से होता है, और स्थिति-यज्ञ तथा अनुभाग यज्ञ कथाय से होता है ।

कर्म यज्ञ के पाँच हेतु हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कथाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कथाय और योग ।

मोक्ष तत्त्व के चार मेद

- | | |
|----------------|------------------|
| १ सम्यग् ज्ञान | ३ सम्यक् चारित्र |
| २ सम्यग् दर्शन | ४ सम्यक् तप |

व्याख्या

नव तत्त्वों में यह प्रभितम तत्त्व है। अबर और निजरा भी साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बाय वे कारणा का जब अभाव हो जाता है, और जब आम विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उम लात्रैषा और सद्वदा शुद्ध म्यनि को मोक्ष कहा जाता है। आनंद गुण का पूर्ण विकास ही वस्तुत मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्बाण—एकाथक शब्द हैं। कर्मचद्ध आत्मा का वह मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध प्रवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ पिभिन्न प्रकार के भेद एवं प्रकार नहीं होते। इसीलिए प्रस्तुत म मोक्ष तत्त्व के भेद उन्हाँ हुआ उमकी प्राप्ति के चार माध्यन बनाए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार माध्यन शाखा मे कहे गए हैं—सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन माध्यनो से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ज्ज गगन है। वह जो अधोगमन और नियम् गमन करता है, उसमें जीव के वह वारण हैं। जैसे लेप महिन तुम्हा जन म नीचे बैठ जाता है, परम्पुर उम पर से मिट्टी

का का हट जाओ स बही तुम्हा छार पासा दब वी माहू पर पा
जाना है। परी लिंगि पासा वी भी है। वर्म महिं पासा
नीर दधीरि में जाना है परे वर्म रहा हो पर परी दासा
रामी गहर नदीनाथ गर्वि म पासा वा जाना है।

एवं बार बब पासा मुझ हो जाना है, एवं यह वर्मी
मंसार में रही जाना। वर्मान् मुख दासा में मंसार वा कारल
ही रही रहता। जग दधप साज वा दिनांको पानी दिना जाए
तिकी भी उर्वर मूषि में जाना जाए, पर वह वभी दग्धिरा
नहीं हो जाना, यैसे ही जिग दासा में मे दधप परे वर्म के
कारला वा पासा दहा गया है, जो मुझ हा जाए है, यह यह
वर्मी मंसार म नहीं जाना।

जिन जीवों में भासा पात्र को याप्ति है, वे ही दोन ग्राम
बरते हैं, उनका भव्य बरते हैं। जिन जीवों में भासा पात्र की
योग्यता नहीं, वे भव्य हैं।

मध्य तत्त्वों में मुद्रा तत्त्व दा है—जीव और अजीव। ये ए
गमी तत्त्व जीव और अजीव की व्याप विशेष हो है। इनका
प्रपना पदार्थ एवं मे स्वातंत्र शोई प्रसिद्ध नहीं।

जिगमें चेताना है, यह जीव है और जिगमें अनना नहीं, वह
अजीव है। ये दोना स्वातंत्र तत्त्व हैं।

पुण्य पौर पाप का गगवेण अजीव तत्त्व मे ही जाना है।
वयोर्वि पुण्य पौर पाप पुद्गल स्त्र है। पुण्य तुम पुद्गल पौर
पाप अङ्गा पुद्गल है।

अथवा इन दोना वा अन्तर्भवि आस्रव और वन्ध में भी विया जा सकता है। शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, तथा शुभ वन्ध और अशुभ वन्ध। इनमें शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्रव और वन्ध तत्त्व तो स्पष्ट ही पुराण हैं, पुराण की पर्याय विशेष ही हैं। अन इनका समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्रव और वन्ध—ये चाह तत्त्व अजीव तत्त्व में प्रा जाने हैं।

संबर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनों जीव की ही पर्याय विशेष हैं। सबर जीव की आस्रव निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी अगत कर्म-शय रूप, एक प्रसार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अन संबर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व में हो जाता है।

अन सक्षेप में दो ही तत्त्व हैं—जीव और अजीव। दोपह इन दोनों का ही विभार है।

इन नव तत्त्वों को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीर भागों में भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय हैं। पाप, आस्रव और वन्ध हेय हैं। पुण्य कथचित् हेय और कथचिन् उपादेय है। संबर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय हैं। ज्ञेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो ग्रहण करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोड़ने के योग्य है।



बोल पन्द्रहर्षी • आनंदा आठ

१ द्रष्टव्य आत्मा	५ शार आनंदा
२ वयाय चात्मा	६ दर्शन आनंदा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आनंदा	८ योग्य आत्मा

प्राचीन

प्राचीन लाक लालक तत्त्व है। वह घटीत में भी या, वर्तमान में भी है और जिवित में भी रहेगा। उमड़ी न उलझि है और न उमड़ा विनाश। यिर भी तेवा तही कहा जा सकता, तिउसमें हिमो प्रशार का परिवर्तन होता हो रही। इसमें तिथि हाशर भी प्राचीन पर्याय गे प्रतिष्ठित है, परिवर्तुरप्योप है। जीव के परिणामों का नाई पर्याय नहीं है। प्रमुख बोन में मुख्या भावताप्तों की धारु विर्द्धि का यान है।

द्रव्य आण्या—प्राचीन पर्यायान प्रदेशा वा समुद्राय है। प्राचीन अस्त्रह है, वह वोई प्रस्तुर प्रदेशा से मधुकुल स्वप्न म निर्मित नहीं हुआ है। प्रदेश, वन्यानामात्र बुद्धि परिवर्त्यित है। ये प्रदेश प्राचीन में पृथक्कर्ता विभाजित नहीं विए जा सकते।

वयाय आत्मा—वयाय चार हैं—ओप, मान, माया और सोभ। वयाय मुक्त आत्मा को वयाय आत्मा कहा है। उत्तरास्त्र और

क्षीण कथाय प्रात्माद्वा को छाइकर शेष मममत ममारी जीवो मे
यह प्रात्मा हानी है।

याग आत्मा—योग मन, बचन एवं काय का व्यापार है। योग
युक्त प्रात्मा को याग प्रात्मा कहते हैं। अयोगी बेवली और निदा
मे यह प्रात्मा मही होती है। शेष सभी जीव योग वासे हैं।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन। उपयोग
युक्त प्रात्मा को उपयोग प्रात्मा कहते हैं। उपयोग प्रात्मा निदा
शोर संमारी मभी जीवों मे होती है। वयाकि उपयोग प्रात्मा का
लक्षण है। अत उरवा गूम्य कोई प्रात्मा नहीं हो सकती।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान प्रात्मा का निज गुण है। ज्ञान युक्त प्रात्मा
का ज्ञान प्रात्मा कहते हैं। यह प्रात्मा सभी जीवों मे है। परन्तु
जब ज्ञान का पर्य मम्प्यमान करें, तब यह प्रात्मा बेवल मम्प्याद्विष्ट
जीवों मे रहेगी। वयाकि मिथ्या दृष्टि मे ज्ञान नहीं, ज्ञान होता है।

दर्शन आत्मा—दर्शन प्रर्थात् सामान्य वाप। दर्शन-युक्त
प्रात्मा को दर्शन प्रात्मा कहते हैं। यह प्रात्मा सभी जीवों म
होता है। प्रथवा मम्प्यगदर्शन स्वप्न प्रात्मा मम्प्यग दृष्टि जीवों मे
ही होती है।

चारित्र आत्मा—चारित्र ध्रयान् श्रान्म स निरूप्ति और शुग मे
प्रदृष्टि। चारित्र युक्त प्रात्मा को चारित्र प्रात्मा बहुत है। यह
प्रात्मा विरति-मम्प्यन जीवों मे होता है।

वीर्य आत्मा—वीर्य प्रर्थात् जीव की गक्षि-विरोप। वीर्य-युक्त
प्रात्मा को वीर्य प्रात्मा कहते हैं। यह प्रात्मा सभी जीवों मे
होती है। अन्तर बेवल इनना हो है कि संसारी प्रात्माओं का
वीर्य सक्रिय प्रर्थात् कियाघ्य वीर्य है, और निदा प्रात्माद्वा का
वीर्य, मम्प्य प्रर्थात् शक्ति स्वप्न वीर्य है।

35

દોન ગૌમદ્વારી : કૃષ્ણર ચીરિય

गाँधी नवर्तना एवं दण्डनी—

- | | | | |
|---|------------|---|--------------|
| १ | रमाप्रभा | ५ | गृद्धप्रभा |
| २ | हारीप्रभा | ६ | तेजप्रभा |
| ३ | एमुखप्रभा | ७ | मलेश्वरप्रभा |
| ४ | षट्कृप्रभा | | |

दरा भयन पति के इसु दफ्तर—

- | | | | |
|---|---------------|----|-------------|
| १ | अमुरकुमार | ६ | द्वीपकुमार |
| २ | तामकुमार | ७ | उदधिकुमार |
| ३ | गुप्तनामुमार | ८ | दिशाकुमार |
| ४ | पिष्टुत्कुमार | ९ | परनरकुमार |
| ५ | अनिकुमार | १० | स्तनितकुमार |

पात्र स्थायर पे पाठ दण्डन—

- १ पृथ्वी याय
२ अप् याय
३ सेवम् याय
४ यायुवाय
५ यगस्थति याय

तीन विवलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

- १ द्वीन्द्रिय
- २ श्रीन्द्रिय
- ३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाँच दण्डक—

- १ तिथञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
- १ मनुष्य का एक दण्डक
- १ व्यन्तर देव का एक दण्डक
- १ ज्योतिष देव का एक दण्डक
- १ चंमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के बारण 'शुभाशुभ' कर्मों का गतिशय बरता रहता है। फिर उन शुभ एवं अशुभ कर्मों का पन भोगन के लिए चार गतियों में पारभ्रमण बरता है। पन जहाँ जीव स्वकुप वर्मों का पन भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। पर्याति वर्म कल या दण्ड भोगने के स्थान को इस योनि में २४ भागों में विभक्त बरते उन स्थानों का नाम दण्डक रखा दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिथञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, श्रीग देवगति के द्वेषरह। इस प्रकार सब मिलानर चीरीस दण्डक होते हैं।



१०००१५८९९९९७२२१९९९९९९९९८८८८६६६६६३०००१५४४४४४०००

१७

पील मनरहस्यों • लग्न्या एद

१	पुराण सेश्या	४	तेजो निश्या
२	नीम निश्या	५	पद्म लग्न्या
३	वाष्पोत सेश्या	६	गुरुत नेश्या

व्याख्या

जोड़े गुनाहुय परिणाम का नेश्या नहीं है। अपवा विष परिणाम में वधो का आभा के गाय गच्छा हो उस नेश्या नहीं है। नेश्या में दो भेद हैं भाव प्रोट द्रव्य। भाव नेश्या विवार स्था भीर द्रव्य नेश्या पुरुण नहीं हाती है।

पश्या नेश्या में दो भेद हैं - पर्म निश्या घोर पश्यर्म सेश्या। पहने को तीन पश्यर्म नेश्या घोर यानो तीन पर्म नेश्या। इसी पशुम नेश्या घोर घुम सेश्या भी नहीं है।

एष्य लक्ष्या —

अतिरोद्ध गदा कोषी, गरमरी पर्म वजिन ।
निर्देयी वेर-समुद्र, कृष्ण-लेश्याऽधिको तर ॥

पुराण सेश्या वासे जीव के विवार पश्यन दूर होने हैं, वह वाघी होता है, वह ईर्यातु हाता है, उमवा जीवन पर्म पूर्य होता है, वह दया रहिन होता है, और उसके मन में मश वेर-विरोध वी भावा रहती है।

नील लेखा—

ਪ੍ਰਲਸ। ਮਨਦ ਬੁਦਿਇਚ, ਖੀ-ਲੁਧ ਪਰ ਵਾਞਕ ।
ਕਾਤਰਇਚ ਸਦਾ ਸਾਨੀ, ਨੀਲਜੈਇਆਧਿਕੋ ਨਰ ॥

नील सेश्या वाला जीव यालसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावा, उरपोक सौर सदा अभिमानी होता है।

कोपात लस्या —

शोकाकुल सदा रुष , पर निदात्मशमक ।
सम्मामे प्राधते मृत्यु , कापोनलेश्याविकीनर ॥

प्रापोत लक्ष्या बाला जीव शोक से ध्याकुल रहता है, सदा शोष में भरा रहता है। पर निदा और स्व प्रसंसा किया करता है, और सप्ताम में जाकर कायर बन जाता है मृत्यु चाहता रहता है।

तैजो लेख्या—

विद्यावान् वरुणा युक्त , वायुषिकार्यं विचारत् ।
साभाइलाभे सदा प्रीत , तेजोलेश्याधिष्ठो नर ॥

तेजोलेद्या वाला जीव विश्वा प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य में विवेक रखता है, और साध तथा ध्यानाभ में सदा प्रसन्न रहता है।

पद्म सिंहा—

अमावास्या निरतस्त्यागे, गुह्यदवेषु भक्तिमान्
गुट चित्त-सदृशनन्दी, पद्मसेशयाधिको नरं

पद्म लेखा वाला जीव क्षमाशील और त्याग निरुत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है।

शुपल लेश्या—

राग ह्रेप विनिमुक्त , शोक निन्दा विवरित ।
परमात्मभावसम्पन्न , शत्रु-सेश्याधिको नर ॥

शुबल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है। अथवा मन्द राग और मांद द्वेष वाला होना है। वह दोक और निदा के बैग से भी परे रहता है। और परम शुब्द लेश्या वाला अन्तत परमात्म दशा को प्राप्त कर लेता है। यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है।

4

१८

चोल यथारहन्त्रैः । दृष्टि तीन

- १ सम्यग्हप्ति
२ मिथ्याहप्ति
३ मिथहप्ति

१५४

यहाँ पर दृष्टि का अध्य है—दशन। सत्तार में जितने भी जीव हैं, उनमें इन तीन दृष्टियों में से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलनी है। ये दृष्टियाँ समुच्चयरूप में चारों गतियों के जीवों में उपलब्ध होनी हैं।

सम्यग दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा धयोपशम से आत्मा में जा एक मात्मानुलधी शुद्ध पारणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व माहौलीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव में देव बुद्धि, धर्म मधर्म बुद्धि और अगुह में गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं।

मिथ दृष्टि—मिथ मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में जो सत्यासत्य मिथित दीलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिथ दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि में जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त अमर्त्यामुख। विन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिथित-सी अवस्था होती है।



२६

बोल उन्नीमर्गां ध्यान चार

- १ आत् ध्यान
- २ रौद्र ध्यान
- ३ द्यर्म ध्यान
- ४ शुबल ध्यान

ध्यानस्था

चित को एकाग्र करना ध्यान है। अपनी चिन्तन धारा को अनेक विषयों से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, मिथ्या कर लेना ही ध्यान है।

ध्यान चार प्रकार का है। पहल दो समार के कारण है। प्रन वे हेय है, त्याज्य है। धन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अन वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इमवा श्रिपुटी कहते हैं। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय वा प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते हैं।

ध्यान के दो भेद हैं—प्रशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान प्रशुभ हैं, पिछले दो शुभ हैं।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एवं प्रिय वस्तु के वियोग में और अमनोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग में, चित्त में जो एक प्रकार की धनवर्गत एकाग्र चिन्तना होती है, उसका आर्तध्यान कहते हैं।

रीढ़ ध्यान—हिंसा में, असत्य में, चारी में और घन आदि के ममत्वभाव में, मन को एकाग्र करना, मन को जोड़ना, रीढ़ ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्लूर होते हैं। इसमें, जीव के स्त्र अर्थात् भयकर एवं निर्दय भाव रहते हैं, यत इस को रीढ़ ध्यान कहने हैं।

धर्म ध्यान—जिसमें अत और चारित्र रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते हैं। सूक्ष्माय का चिन्तन परना, प्रती का विचार करना, तथा समार की अमारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

२५

सोल पञ्चानन्दीः शारिष पीठ

- १ सामाजिक शारिष
- २ एंद्रोग्रामा शारिष
- ३ परिहार विशुद्धि शारिष
- ४ मूढम गम्पराम शारिष
- ५ अपाद्यता शारिष

१२०॥

पात्रों की नियन्त्रण स्थिति रखने का प्रबन्ध भारीत है। शारिष, विर्गी, मदम, और दबर में यह एकाधिक दबर है। शारिष का अपवाहन नियूनि और धूम में प्राप्त। लावड़ लालव के टिकोंप को शारिष बहु आता है।

शार्योज खाला में शारिष मोटीज बम है धन ने, उत्तम से और भयानकम गे होते थान विर्गी विशुद्धि दो शारिष दर्शते हैं। ददगा खाला का साथ दोषम नियून होतर टिकोंप यान में प्राप्त होता भी शारिष बहु जाता है। शारिष के सामाजिक घादि जीन भेद है।

सामाजिक शारिष—सामाजिक उभाइ गम भाइ। गग भाइ
ए गापना को सामाजिक शारिष बदल दे। दरमा गारु

प्रवृत्ति का परित्याग और निरवद्ध प्रवृत्ति का आसेवन सामायिक चरित्र है।

छेदोपस्थापन चारित्र—जिस चारित्र में पूव गृहीत चारित्र-पर्याय का छेद एव महाव्रतों में उपस्थापन अर्थात् आरोपण होता है, उसे छेदोपस्थापन चारित्र कहते हैं। यह चारित्र पूव चारित्र को छेदन करके आता है, अत इसे छेदोपस्थापन कहते हैं।

उक्त चारित्र के दो भेद हैं—निरतिचार और सातिचार। मध्य के २३ तीयद्वादश मेरे जग २३ वें तीथद्वादश के मुनि या आर्याएँ, २४ वें तीथद्वादश वे शासन मे सम्मिलित होते हैं, तब सामायिक चारित्र का छेदन वर महाब्रतारोपण रूप छेदोपस्थापन चारित्र ग्रहण करते हैं, यह निरतिचार प्रथात् दोप-रहित स्थिति में छेदोपस्थापन चारित्र का ग्रहण है। इसी प्रकार प्रथम और अन्तिम तीयद्वादश के शासन में सबप्रथम सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है, अनन्तर अमुक कान वे बाद, जो उड़ी दीशा के रूप में महाब्रतारोपण किया जाता है, यह भी निरतिचार छेदोपस्थापन चारित्र है। और जब वि सी दोप विशेष के कारण पूव-दीशा पर्याय का छेदन कर प्रायशिक्षण रूप में आनंदशुद्धि के तिए पुन महाब्रतारोपण भी किया जानी है, वह सातिचार छेदोपस्थापन चारित्र है।

परिहार विशुद्धि चारित्र—जिस चारित्र में परिहार नामक विशेष तप किया जाता है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है। परिहार ग्रथन् सघ से पृथक् होकर विशिष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि बरना, परिहार विशुद्धि है।

परिहार नामक तप की विधि संक्षेप में इस प्रकार है—

“नव सातुशो वा गण परिहार तप प्राग्भूम वरता है। इनमें से चार तप बनते हैं, और चार उनकी वैयाकृत्य (भवा) बरते हैं, तथा एक उनक गुह (निदेशक) रूप में रहता है।

पहले चार साथु छट मास तक उपवास, वेला, तला, चौला, पचौला, तथा आयविन आदि तप बरता है। फिर सेवा करने वाले छट मास तक तप बरते हैं, और तप बरने वाले सेवा बरते हैं। पिर गुह पद पर रहा हुआ साथु भी छह मास तक तप बरता है। इस प्रकार अठारह मास में इस परिहार तप का कल्प पूरा होता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र—सम्पराय का शब्द व्याप्त होता है। व्याप्त चार हैं—कोष, मान, माया और लोभ। परन्तु इस चारित्र में केवल सूक्ष्म सञ्चलन रूप साम्राज्य क्षयाय ही शेष रह जाता है। प्रत इसका सूक्ष्म सम्पराय चारित्र रहत है। यह चारित्र दग्ध गुणस्थान का है।

यथास्यात् चारित्र—सवधा विशुद्ध चारित्र को अर्थात् अति चार रहित चारित्र को यथारयात् चारित्र कहते हैं। इसमें कपाय का उदय नहीं रहता। अत यह विशुद्ध चारित्र है। अथवा कपाय मुक्त साधु का चारित्र यथास्यात् चारित्र है। इससे बीतगां चारित्र भी कहने हैं। ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक का चारित्र यथारयात् चारित्र है। यद्यपि ग्यारहवें गुणस्थान में कपाय की (मूळ लोभ कपाय की) सत्ता रहती है, तथापि वहाँ उसका उदय नहीं है। अत यह भी यथास्यात् चारित्र (विशुद्धतम् चारित्र) कहा जाता है।



